आदमी दरअसल एक कीड़ा है!

हरिशंकर परसाई

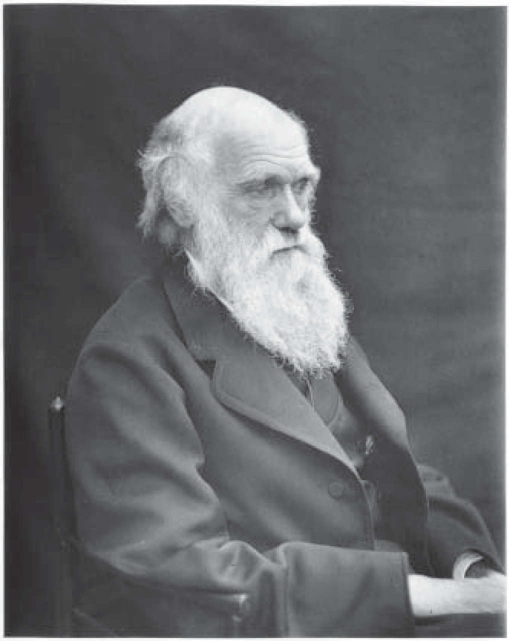

चित्र-1: 1874 के इर्द-गिर्द खींची गई चार्ल्स डार्विन की तस्वीर। यह फोटो उनके बेटे लियोन्हार्ड डार्विन ने खींची थी।

तिहत्तर वर्ष का एक वृद्ध एक बड़े-से मकान के सामने खड़ा होकर दरवाज़े पर लगी घण्टी बजाता है। थोड़ी देर बाद घर का नौकर बाहर आकर सूचना देता है कि मालिक घर में नहीं हैं। उनके शीघ्र लौटने की कोई आशा नहीं है। पर नौकर बड़े आदमी की आदतें भली-भाँति जानता है। वह शिष्टाचार का महत्व समझता है। फिर वृद्ध बहुत कमज़ोर भी दिख रहा है और लगता है, वह बेहोश होकर गिर पड़ेगा। नौकर वृद्ध से प्रार्थना करता है कि थोड़ी देर आराम कर लीजिए। आगन्तुक नौकर की बात का सम्मान करता है, पर किसी को कष्ट देते हुए उसे दुःख होता है। खुद तकलीफ सहने की उसे आदत है, दूसरों को

क्यों परेशान किया जाए?

आखिर वह वहाँ से चल पड़ता है। अपनी ज़िन्दगी में उसने आराम करना तो सीखा ही नहीं था। सड़क पर आकर उसने टैक्सी की और घर लौट गया।

मानवता के दुर्लभ आदर्शों और मूल्यों को हर कीमत पर मान्यता देने वाला वह वृद्ध - चार्ल्स डार्विन - अपने कॉलेज के दिनों में पादरी बनते-बनते, प्राकृतिक इतिहास में अपने बढ़ते रुझान के कारण वैज्ञानिक बन गया। विज्ञान के क्षेत्र में जितना विरोध डार्विन का हुआ, उस युग में शायद ही उतना विरोध किसी और वैज्ञानिक का हुआ होगा।

प्रेम का पथ

डार्विन का जन्म बारह फरवरी 1809 को हुआ था। 1809 कई कारणों से महत्वपूर्ण रहा था। डार्विन को इस पर गर्व हो सकता है कि उस साल उनके अतिरिक्त लिंकन, ग्लैडस्टोन, पो, टेनिसन, मेंडलसन, गोगोल, ब्रेल इत्यादि महान और प्रसिद्ध वैज्ञानिक, राजनीति के आचार्य, लेखकों, शिक्षाविदों और कवियों ने जन्म लिया था। इन सभी व्यक्तियों ने अपने-अपने क्षेत्र में खूब नाम कमाया और मानवता की सेवा की। डार्विन ने भी अपने उद्योग, कर्मठता और सतत प्रयत्न के कारण अपने क्षेत्र में आशातीत सफलता प्राप्त की। वैसे डार्विन के पितामह भी एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक थे।

बचपन में डार्विन सुन्दर लगने वाली चीज़ें और जीव, विशेषरूप से, कीड़े, पत्ते, फूल, तितलियाँ, सिक्के, चिड़ियाँ, घोंघे, चमकदार पत्थर के टुकड़े आदि बड़ी आत्मीयता से इकट्ठा करते थे। हाँ, वे ध्यान रखते थे कि कीड़े-मकोड़े जीवित न हों। वे किसी भी प्राणी की हत्या को पाप मानते थे और उनके मन में सभी छोटे-बड़े प्राणियों के प्रति सहानुभूति और स्नेह था।

यह प्रेम उन्होंने बीगल पर ही पैदा किया था।[1] उस समुद्री यात्रा के दौरान डार्विन ने अनेक घटनाओं को पास से देखा और समझा। अपनी आँखों के सामने उन्होंने नीग्रो[2] औरतों को पाशविक अत्याचारों से बचकर भागने के प्रयत्न में प्राणों से हाथ धोते देखा। गुलाम नीग्रो नौकरों को मालिकों की सज़ा सहते, अत्याचार सहते देखा। इन सभी क्रूर घटनाओं का अक्स-सा डार्विन के मन पर खिंच गया था। यात्रा से लौटकर डार्विन ने एक किताब, *द वॉयेज ऑफ*

---

[1] एचएमएस बीगल एक समुद्री जहाज़ था जिसके करीब पाँच साल के सफर (1831-1836) पर डार्विन एक प्रकृति-विज्ञानी के तौर पर शामिल थे। उनका प्रमुख काम था प्रकृति-विज्ञान के सन्दर्भ में विभिन्न जगहों के अवलोकन करना और नमूने इकट्ठे करना।

[2] काले लोगों के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला पुराना प्रचलित शब्द, जिसे अपमानजनक होने के नाते अब इस्तेमाल नहीं किया जाता।

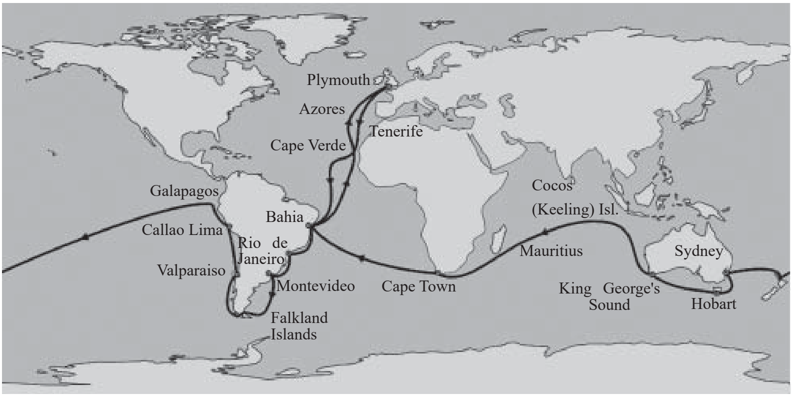

चित्र-2: *बीगल का दूसरा सफर, जिसमें डार्विन भी शामिल थे, दर्शाता नक्शा। 27 दिसम्बर 1831 को इंग्लैंड के प्लाईमाउथ से शुरू हुई यह खोजयात्रा दो साल में खत्म होनी थी, मगर इसकी अवधि बढ़ते-बढ़ते 2 अक्टूबर 1836 को पूरी हुई। इसके कप्तान रॉबर्ट फिट्ज़रॉय थे।*

द बीगल, लिखी जिसमें उन्होंने अपनी यात्रा के संस्मरणों को कवितामयी भाषा में लिपिबद्ध किया। समस्त पीड़ित मानवता के लिए जीवन भर उनके दिल में अपार प्यार और स्नेह भरा रहा। उन्होंने अपने हरेक प्रयास में इस तथ्य का ध्यान रखा कि उस प्रयास से मानव-जाति का सदैव हित हो।

उत्क्रान्ति की प्रतिस्पर्धा

अपनी बीगल यात्रा के अवलोकनों और नमूनों पर लगातार बीस साल तक अथक परिश्रम करने के बाद डार्विन ने *ऑन द ओरिजिन ऑफ स्पीशीज़* (प्रजातिओं की उत्पत्ति पर) नामक किताब लिखी। पुस्तक तैयार हो गई और डार्विन उसे प्रकाशित करने की तैयारी कर रहे थे। यह सन् 1858 की घटना है।

एक दिन सबेरे-सबेरे डार्विन बरामदे में बैठे थे। पोस्टमैन ने उनके हाथ में एक बड़ा-सा पुलिन्दा रख दिया। अचरज से भरकर डार्विन ने जल्दी-जल्दी पैकेट खोला। पैकेट खोलते ही उनकी नज़र एक बड़ी-सी पोथी पर पड़ी। वह पोथी हाथ से लिखे एक निबन्ध की थी। निबन्ध का शीर्षक देखकर डार्विन थोड़ी देर के लिए भौचक्का रह गए। जैसे कुछ अप्रत्याशित-सा घट गया। धीरे-धीरे करके उन्होंने निबन्ध पढ़ डाला, और महसूस किया कि मानो उनके सारे किए-कराए पर पानी फिर गया हो, बीस साल का परिश्रम एक मिनट में चौपट हो गया हो, सारी सम्पदा-सी

लुट गई हो, अँधेरा-सा छा गया उनकी आँखों के सामने। पर उन्होंने खुद को सँभाल लिया।

दरअसल, वह निबन्ध उत्क्रान्ति या 'एवोल्यूशन' पर सर्वथा मौलिक और उत्कृष्ट लेख था जिसे अल्फ्रेड रसल वॉलेस ने लिखा था। उसी विषय पर डार्विन भी कार्यरत थे, और बीस वर्ष के अथक परिश्रम के पश्चात उन्होंने ठीक वही परिणाम ढूँढ निकाला था, जिसे वॉलेस ने खोजा था। यह भी अजीब संयोग था। वॉलेस को क्या पता था कि डार्विन भी उसी विषय पर खोज कर रहे थे।

इस संयोग पर डार्विन ने निर्णय लिया कि उत्क्रान्ति की खोज का सम्पूर्ण श्रेय वॉलेस को दिया जाए। इस प्रकार का विचार डार्विन ने एक पत्र में अपने मित्र के सामने व्यक्त किया था।

अन्त में, जर्नल में लेख छपा जिसमें उन दोनों के निबन्ध एक ही अंक में प्रकाशित हुए और दोनों को उस खोज का स्वतंत्र साझा श्रेय मिला। इस तरह डार्विन और वॉलेस के बीच उम्रभर चलने वाली अन्तरंग मित्रता की शुरुआत भी हुई। और इस लेख के छपने के कुछ ही समय बाद *ऑन द ओरिजिन ऑफ स्पीशीज़* प्रकाशित की गई जो उनके निबन्ध का ही विस्तृत रूप था। इसके पश्चात् भी डार्विन चुप नहीं बैठे। वे और तेज़ी-से अपनी अन्य खोजों में जुट गए।

महानता क्या है?

डार्विन में सादगी और सरलता कूट-कूट कर भरी थी। अपने सहयोगियों, मित्रों और स्नेहियों के प्रति वे बड़े उदार और नम्र रहते थे। पेड़ों, घास, एवं लताओं से डार्विन बच्चों जैसे कुछ इस तरह बातें करते थे कि लगता था अपने सामने खड़े किसी व्यक्ति से किसी विषय पर इन्सान-चर्चा कर रहे हों, या जैसे बच्चों पर स्नेह लुटा रहे हों।

एक दिन ग्लैडस्टोन, ब्रिटेन के प्रधान मंत्री, डार्विन से मुलाकात करने आए। अपने-अपने क्षेत्र में दोनों का कोई सानी नहीं था। बड़ी सरलता से चर्चा होती रही। ग्लैडस्टोन के चले जाने पर डार्विन ने अपने एक मित्र से कहा, "ग्लैडस्टोन इतने महान हैं, पर मुझसे इस ढंग से चर्चा करते रहे, जैसे मैं महान हूँ और वे साधारण हैं। यह उनकी महानता है।"

ग्लैडस्टोन ने भी अपने साथी से ऐसी ही बात कही थी, डार्विन के बारे में। उनके विचार से डार्विन की महानता से कोई इनकार नहीं कर सकता, लेकिन वे भी ग्लैडस्टोन से बच्चों-की-सी सरलता से चर्चा करते रहे। एक महान, दूसरे महान से शायद ऐसी ही बातें करता है।

डार्विन का जीवन विविधताओं और विचित्रताओं से परिपूर्ण था। अपने बच्चों और पत्नी से उन्हें अगाध प्रेम था। उनकी सफलता का श्रेय

बहुत कुछ उनकी पत्नी, एम्मा, को भी जाता है जो सदा उन्हें उत्साहित करती रहीं।

अपनी मृत्यु के तीन माह पहले वे बहुत बीमार हो गए थे। इस दौर में एम्मा ने उनकी बहुत मदद की और उन्हें धीरज बँधाया। वे एम्मा से कहा करते थे, "मुझे मृत्यु का तनिक भय नहीं है – याद करना कि मेरे लिए तुम कितनी अच्छी पत्नी रहीं, और हमारे बच्चों को बताना कि मुझे वे कितने अच्छे लगते हैं। मृत्यु तो आएगी ही। मुझे चिन्ता है, तो केवल इस बात की कि मैं अपना कार्य आगे नहीं बढ़ा पाऊँगा। मैं तो चाहता हूँ वैज्ञानिक अनुसन्धान जारी रखना, काम में लगे रहना।"

डार्विन का क्रम-विकास का सिद्धान्त

डार्विन का क्रम-विकास (या, उद्विकास अथवा उत्क्रान्ति) का सिद्धान्त दुनिया में जीवों के प्रजातीय विकास को समझने का एक वैज्ञानिक तरीका है। इसके मुख्यतः दो पहलू हैं:

1) प्रजातियाँ परिवर्तनों के साथ आगे बढ़ती हैं – डार्विन ने तर्क किया कि प्रजातियाँ स्थिर नहीं होतीं, बल्कि विकासशील होती हैं। वे एक ही पूर्वज से शुरू होकर, धीरे-धीरे, पीढ़ी-दर-पीढ़ी बदल सकती हैं। प्रत्येक जीव अपने जन्मदाता से, महीन रूप से ही सही, अलग होता है। इसका यह अर्थ भी निकलता है कि सभी जीवों के बीच उद्विकास सम्बन्धी एक दूरस्थ रिश्ता है।

2) प्राकृतिक वरण (या, चयन) – यह पहलू तर्क करता है कि भले ही ये भिन्नताएँ बेतरतीब होती हैं, मगर इनमें से कुछ भिन्नताएँ, सापेक्ष रूप से, किसी जीव को उसके परिवेश में जीवित रहने में अधिक मदद करती हैं या फायदा देती हैं। चूँकि इन फायदों से उनके जीवित रहने की सम्भावना बढ़ती है, और फलस्वरूप, उनके प्रजनन करने की सम्भावना भी, इस तरह उनके ये फायदेमन्द व भिन्न गुण अगली पीढ़ी तक पहुँचते हैं, और इस तरह एक प्राकृतिक चयन विधि के ज़रिए, प्रजातियों में विकास होता है।

इसे एक उदाहरण से भी समझा जा सकता है – मान लीजिए, एक बर्फीले इलाके में अलग-अलग रंग के खरगोशों का एक झुण्ड है। उस झुण्ड में, रंग के आधार पर, सफेद रंग के खरगोशों के जीवित रहने की सम्भावनाएँ बाकी खरगोशों से अधिक होंगी। क्यों? बर्फ का क्या रंग होता है? और इस तरह उनके प्रजनन करने की सम्भावनाएँ भी अधिक होंगी, जिससे धीरे-धीरे उस इलाके में सफेद रंग के खरगोशों की तादाद ही बहुमत में होगी। यह हुआ प्राकृतिक वरण।

- संकलित

चित्र-3: 'मैन इज़ बट अ वर्म' (आदमी दरअसल एक कीड़ा है)। 1881 में, ब्रिटिश व्यंग्य पत्रिका 'पंच' में, इस शीर्षक के साथ छपा डार्विन और उनके सिद्धान्त पर आधारित कार्टून। इसमें उन्हें एक कीड़े से एक विक्टोरियन जेंटलमैन तक की उत्क्रान्ति के बीच दर्शाया गया है। डार्विन के इस तरह के कार्टून न सिर्फ उनके सिद्धान्तों की आम धारणा व समझ के संकेत देते थे, बल्कि इस तरह उनके सिद्धान्तों की लोगों तक पहुँच और लोकप्रियता बढ़ाने में भी मदद करते थे।

जीवन का रहस्य

डार्विन की यह कौन-सी खोज थी जिसने सारे संसार के विचारों में क्रान्ति ला दी? जिसने जीवन के प्रति और साथी मानवों के प्रति दृष्टि ही बदल दी?

इस सिद्धान्त के अच्छे-बुरे व्यापक प्रभाव पड़े। डार्विन द्वारा प्रतिपादित

उत्क्रान्ति के सिद्धान्त की बारीकियों को न समझते हुए ऐसा प्रस्तुत किया जाने लगा कि जो बलशाली है, वही जिएगा, निर्बल का जीवन ही व्यर्थ है। इस प्रकार तो शक्ति ही एकमात्र गुण हो जाता है और दूसरों को हराना ही जीवन का ध्येय। डार्विन के सिद्धान्त से जहाँ एक ओर जीव-सृष्टि के विकास के बुनियादी रहस्य को समझने में मदद मिली, वहीं दूसरी ओर, उनके उत्क्रान्ति के सिद्धान्त का गलत अर्थ निकालते हुए दुनिया में बर्बर शक्ति की प्रतिष्ठा भी बढ़ी।

एक सदी गुज़र जाने के बाद भी डार्विन द्वारा प्रस्तुत उत्क्रान्ति के सिद्धान्त पर सोच-विचार, चर्चा और बहस आज भी उतने ही ज़ोर-शोर से जारी है।

हरिशंकर परसाई (1924-1995): हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध व्यंगकार थे। व्यंग रचनाओं के अलावा उपन्यास और लेख भी लिखे। उनका जन्म जमानी, होशंगाबाद (मध्य प्रदेश) में हुआ था। वे हिन्दी के पहले रचनाकार हैं जिन्होंने व्यंग्य को विधा का दर्जा दिलाया और उसे हल्के-फुल्के मनोरंजन की परम्परागत परिधि से उबारकर समाज के व्यापक प्रश्नों से जोड़ा। साहित्य अकादमी पुरस्कार, शिक्षा सम्मान (मध्य प्रदेश शासन), शरद जोशी सम्मान आदि से सम्मानित।

सभी चित्र इंटरनेट से साभार।

यह विज्ञान गल्प मित्र-बन्धु-कार्यालय, जबलपुर द्वारा सन् 1964 में प्रकाशित हरिशंकर परसाई की किताब *वैज्ञानिक कहानियाँ* से लिया गया है। यह किताब तैलंगाना क्षेत्र की ग्यारहवीं कक्षा के लिए नॉनडिटेल्ड प्रथम भाषा की पाठ्यपुस्तक के रूप में आन्ध्र प्रदेश शिक्षा विभाग द्वारा दी गई स्वीकृति के तहत प्रकाशित की गई थी।

यह लेख मूल लेख का सम्पादित स्वरूप है जिसमें तथ्यात्मक त्रुटियों को ठीक करने के साथ ही पठनीयता बेहतर करने की भी कोशिश की गई है।